साध्वी प्रज्ञा ठाकुर और धार्मिक कट्टरवाद

सभी कट्टरवादियों का एक ही चरित्र होता है, चाहे वह मुस्लिम कट्टरवादी हो या साम्यवादी या संघ परिवार वाला। तीनों ही स्वयं को शेष समाज का स्वंय भू–प्रतिनिधि मानते हैं और समाज के शेष समूह का प्रतिनिधित्व करना अपना अधिकार समझते हैं। प्रज्ञासिंह ठाकुर एक ऐसी ही महिला थी। ऐसी उच्च महत्वाकांक्षी महिला को यदि साध्वी की पोशाक मिल जाये तो फिर उसकी उड़ान ज्यादा ही तेज हो जाती है और इन दोनों के साथ–साथ उसे किसी राजनैतिक विचारधारा का मंच मिल जावे तो फिर दुस्साहसी होने से उसे कौन रोक सकता है। जब बंगाल में तापसी बलात्कार, हत्या में साम्यवादियों का नाम आया तब माकपा वालों ने हल्ला किया कि जब तक प्रमाणित न हो तब तक दोषी कहना ठीक नहीं। जब सिमी के लोग पकड़े गये तब मानवाधिकार वालों ने वही तर्क दुहराया और आज जब संघ परिवार बजरंगदल या अन्य लोग पकड़े जा रहे हैं तब संघ परिवार वही बात कह रहा है। तीनों के कार्य एक हैं, परिणाम एक हैं, बचाव के तर्क भी एक ही है। तापसी बलात्कार हत्या मामले में साम्यवादी कार्यकर्ताओं को सजा हो चुकी है, सिमी के लोगों पर भी मामले चल रहे हैं और प्रज्ञा ठाकुर टीम पर भी चलेंगे। कौन व्यक्ति अपराधी सिद्ध होगा और कौन नहीं, यह अभी नहीं कहा जा सकता किन्तु यह बिल्कुल निश्चित है कि तीनों का चरित्र एक सा ही है। संघ की सोच हिंसक है यह आरोप कोई न तो नया है न ही पूरी तरह असत्य। क्योंकि गांधी हत्या से ही इस आरोप को हवा मिलने लगी थी। उसके बाद भी संघ परिवार ने न कभी अपने हिंसक स्वरूप को बदलने का प्रयत्न किया न ही छोड़ने का। अब यदि कोई कार्यकर्ता अति उत्साह में आकर किसी निश्चित सीमा रेखा से आगे चला जाता है तो उसके कलंक के छीटे तो आप पर पडेंगे हीं। इसी अंक में श्री एम.एस.सिंगला जी ने हिंसा का भरपूर समर्थन किया है। कल्पना करिये कि कोई अतिभावना प्रधान व्यक्ति उनके विचार पढ़कर हिंसक बन बैठे तो सिंगला जी भले ही कानून के अनुसार दोषी न हों किन्तु मेरे विचार में तो वे दोषी है हीं। आज हम गिने चुने मुस्लिम आतंकवादियों के आतंकवादी कारनामों का दोष पूरे मुसलमान समाज पर इसलिये लगा देते हैं क्योंकि अधिकांश मुसलमान ऐसी घटनाओं के पूर्व ऐसे विचारों का समर्थन करते हैं और घटनाओं के बाद ऐसे आरोपियों से प्रत्यक्ष या परोक्ष सहानुभूति रखते हैं। संघ परिवार का भी ऐसी ही चरित्र है और साम्यवादियों का तो है ही। प्रज्ञा सिंह ठाकुर दोषी हैं कि नहीं यह तो बाद में पता चलेगा किन्तु उन्हें तब तक निर्दोष नहीं कहा जा सकता जब तक पूरी तरह दोष रहित सिद्ध न हो जावे।

दूसरी बात यह है कि इस पहली घटना ने एक कहावत का मुँह बन्द कर दिया है कि सभी मुसलमान तो आतंकवादी नहीं होते किन्तु सभी आतंकवादी अवश्य ही मुसलमान होते हैं। अब संघ परिवार के लोग यह कहावत कभी दुहरा नहीं सकेंगे। संघ परिवार के बड़बोलेपन पर विराम लगाना एक महत्वपूर्ण घटना मानना चाहिये अन्यथा ये लोग आतंकवाद के विरूद्ध बोलते समय कुछ ज्यादा ही एक पक्षीय हो जाया करते थे।

मैंने प्रज्ञासिंह ठाकुर घटना को पहली घटना लिखा है जबकि गुजरात में वहाँ के मुख्यमंत्री तक ने नर संहार में भूमिका निभाई अथवा उड़ीसा के कंधमाल में इसाइयों के खिलाफ बलात्कार, हिंसा या जीवित जलाने तक के कारनामे सम्पन्न हुए। मुझे तो कष्ट होता है यह जानकर कि शिवाजी के नाम पर स्वंय को स्थापित करने वाले समूह तक हत्या के पूर्व बलात्कार करने लगे हैं और ऐसे तत्वों को हम सहायता करते हैं। फिर भी मैं समझता हूँ कि अब तक ऐसी सम्पन्न घटनाएँ क्रिया न होकर प्रतिक्रियाएँ मात्र थीं। गुजरात में ट्रेन की बोगी जलाने की घटना या उडीसा में स्वामी लक्ष्मणानन्द की हत्या ने उत्तेजना पैदा की जिस उत्तेजना में बहकर या उस बहाने कुछ ऐसी आतंकवादी घटनाएँ घटित हुई। किन्तु प्रज्ञा ठाकुर घटना में ऐसी किसी तात्कालिक तथा भावनात्मक उत्तेजना का कोई सम्बंध नहीं था। यह तो सीधा–सीधा आतंकवाद था जिसके पीछे कोई अन्य बहाना नहीं हो सकता। इसलिये इसे गुजरात या उड़ीसा की घटनाओं के साथ जोड़कर देखना ठीक नहीं।

कुछ लोग संघ और हिन्दू को एक साथ जोड़कर गल्ती करते हैं। संघ इस्लाम और इसाइयत की संख्यात्मक वृद्धि का प्रतिद्धंदी है। संघ को चिन्ता है कि यदि एक भी मुसलमान या इसाई बढ़ता है तो उसका एक वोट घटता है यह निश्चित है। इसलिये उसके लिये यह जीवनमरण का प्रश्न है। इसी चिन्ता में संघ परिवार घर वापसी या अन्य अनेक कार्यक्रमों में बढ़ चढ़कर आगे रहता है। किन्तु हिन्दू तो कभी इस प्रतिद्धंदिता में शामिल नहीं रहा। हिन्दुओं ने तो एकपक्षीय घोषणा कर रखी है कि वह किसी अन्य धर्मावलम्बी को अपने साथ शामिल करने का प्रयत्न नहीं करेगा। दुनिया के किसी धर्म में इतना नैतिक साहस नहीं कि वे ऐसा एकपक्षीय प्रयत्न विराम घोषित कर सकें। आज से करीब चालीस पैंतालीस वर्ष पूर्व हमारे शहर रामानुजगंज के सभी हिन्दू–मुसलमान इसाई नागरिकों ने साम्प्रदायिक टकराव रोकने के लिये एक सर्वसम्मत व्यवस्था बनाई थी कि यदि किसी धर्म का कोई लड़का किसी अन्य धर्म की लड़की से पत्नी सम्बंध बनायेगा तो लड़के को लड़की का धर्म स्वीकार करना होगा। शीघ्र ही तीन मुसलमान युवकों को हिन्दू धर्म स्वीकार करना पड़ा। तीनों के संस्कार हुए और नाम बदले गये। तीनों पूरी इमानदारी से हिन्दु बने और रहे किन्तु कुछ वर्ष बीतने के बाद भी हिन्दुओं ने उनकों आन्तरिक रूप से हिन्दू स्वीकार नहीं किया। धीरे–धीरे वे फिर मुसलमान होते गये और आज मुसलमान हैं। संघ परिवार इसे हिन्दुओं की कमजोरी मानता है किन्तु इस कमजोरी में ही एक गर्व भी छिपा है। इस्लाम और इसाइयत के गाल पर यह तमाचा भी है कि तुम चाहे जिनती बड़ी–बड़ी बातें कर लो किन्तु हो तो तुम सम्प्रदाय ही क्योंकि तुम तो हमेशा दूसरों के माल पर अपनी बुरी नजर रखते हो जबकि हिन्दू तुम्हारे संस्कारों के ठीक विपरीत है। मैं समझता हूँ कि भारत में चाहे समझा–बुझाकर या कानून के द्वारा मुसलमानों और इसाइयों को ऐसी छीना–झपटी के प्रयत्नों से दूर करके या हिन्दुओं के समान एकपक्षीय विस्तार विराम की सलाह देनी चाहिये जिससे कम से कम ऐसे प्रयत्नों पर तो रोक लगे। यदि वे न माने तो उन्हें मजबूर कर देना चाहिये।

मैने जनसत्ता तेरह नवम्बर के अखबार में किन्ही विद्वान कल्याण जैन का आतंक के चेहरे शीर्षक लेख पढ़ा। लेखक ने हिन्दुओं पर दोषारोपण करने में एकपक्षीय पक्षपात किया है। उन्होने लिखा है कि साम्प्रदायिकता के मामले में तो भारत अमेरिका से भी कई गुना आगे निकल गया क्योंकि अमेरिका में ग्यारह सितम्बर के आक्रमण के बाद भी फैली हिंसा में सिर्फ दो लोग मरे जबकि भारत में अठावन लोगों के जलाये जाने से ही गुजरात में कई सौ मुसलमान मारे गये। श्री जैन ने अपने पक्षपाती तर्कों में यह भी लिखा है कि '' साम्प्रदायिकता किसी की भी हो, वह खराब होती है किन्तु बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता तो बहुत ही खतरनाक होती है। भारत में बहुसंख्यक अल्पसंख्यक आबादी का अनुपात एक और छः का है। क्या एक अल्पसंख्यक छः बहुसंख्यकों का मुकाबला कर सकता है? वह भी तब जब बहुसंख्यकों के साथ सरकार पुलिस सुरक्षा बल आदि भी साथ हों।'' श्री कल्याण जैन ने जो कुछ लिखा वह भूलवश न लिखकर जानबूझकर लिखा है। श्री जैन यह भूल गये कि जब बाबरी मस्जिद गिरी थी तो प्रतिक्रियास्वरूप बम्बई में बम विस्फोंटों में कई सौ बहुसंख्यक मारे गये थे। श्री कल्याण जैन का एक और छः का अनुपात कहाँ गया?प्रश्न उठता है कि यदि सौ लोगों में निन्यान्वे शाकाहारी हों और एक मांसाहारी तो मुर्गे की जान को किससे खतरा अधिक है? हिन्दू छःगुना होते हुए भी उन्होने घोषणा कर रखी है कि हम किसी मुसलमान या इसाई को हिन्दु बनाने का प्रयत्न नहीं करेंगे। मुसलमानों और इसाइयों ने घोषणा कर रखी है कि हम हिन्दुओं को अपने धर्म में शामिल करने के सभी प्रयत्न करेंगे। प्रश्न उठता है कि खतरा किसको किससे है। हिन्दू मुसलमान को पडोस में मकान नहीं देता, अछूत मानता है, घृणा करता है या और भी सब प्रकार का अलगाव रखता है और मुसलमान हिन्दुओं के साथ घुल मिलकर रहता है, मदद करता है मीठी बातें करता है आदि–आदि। प्रश्न उठता है कि खतरा किसको किससे है? जब आपकी बुरी नजर मेरे अस्तित्व पर है तो आपके व्यवहार पर मैं कितना और क्यों विश्वास करूँ? अल्पसंख्यकों के पेशेवर वकीलों को बहुसंख्यकों पर आरोप लगाने के पूर्व अपने मुवक्किल का इतिहास अवश्य ही जान लेना चाहिये। भारत में मुसलमानों के साथ हिन्दुओं का व्यवहार और पाकिस्तान में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के व्यवहार की तुलना यदि लेखक नहीं करता तो उसे पेशेवर वकील के अतिरिक्त और क्या लिखा जा सकता है।

मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि हिन्दुओं का धार्मिक आधार पर किसी आतंकवादी सोच से कोई सम्बंध नहीं है। यदि संघ परिवार का है तो उसके लिये हिन्दुओं पर लांछन नहीं लगाया जा सकता क्योंकि संघ परिवार हिन्दू धर्मावलम्बियों में से सत्ता संघर्ष में शामिल कुछ व्यक्तियों का समूह है जिसकी बुरी नजर सत्ता के लिये हिन्दुओं पर उसी तरह है जैसे मुसलमानों, या साम्यवादियों या अन्य संगठनों की। हिन्दुओं ने आज तक कभी धार्मिक आधार पर संगठित होकर संघ का समर्थन नहीं किया और न ही भविष्य में ऐसी कोई संभावना है जैसा मुसलमान या वामपंथी करते हैं। प्रज्ञा सिंह ठाकुर ने हिन्दू होने के साथ–साथ साध्वी का वेश भी धारण किया। इसके बाद भी उसकी गिरफ्तारी से हिन्दुओं में कोई हलचल नहीं हुई। प्रज्ञा के समर्थन में कोई धार्मिक बयान आज तक नहीं आया। यदि संघ बयान दे तो यह उसका अपना पारिवारिक मामला है धार्मिक नहीं। जिस दिन प्रज्ञा ने राजनीतिक प्रतिद्वंदिता में पैर रख दिया उसी दिन से वह साध्वी न रहकर गेरूआ वस्त्रधारी बन गई। गेरूआ वस्त्रधारी रावण यदि सीताहरण करे तो उसके लिये समाज कितना जबाब दे। हिन्दू समाज ने तो आज भी गेरूआ वस्त्र के दुरूपयोग के लिये, रावण को माफ नहीं किया है। प्रज्ञा ठाकुर पर लगे प्रारंभिक आरोप ही हिन्दू समाज में कोई गंभीर प्रतिक्रिया पैदा नहीं कर सके हैं। अन्य धर्मावलम्बियों को अपने गिरेबान में झांककर देखना होगा कि ऐसे नाजुक मामलों में वे भी वैसा ही करते हैं क्या?

आप यदि सिर्फ हिन्दू हैं और आपने कोई साम्यवादी, संघ परिवारी, मानवाधिकारवादी या अन्य राजनैतिक चोला नहीं पहन रखा है तो धैर्य रखिये। चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता। हिन्दुत्व को अपनी सुरक्षा के लिये आतंकवाद का सहारा लेने की कोई मजबूरी नहीं है। हिन्दू बचपन से ही धर्म निरपेक्ष है। यदा–कदा मुसलमानों, इसाईयों, नकली धर्मनिरपेक्षों तथा मानवाधिकारवादियों की उछल कूद से उसे कभी–कभी चिन्ता भी होती है परन्तु ऐसी हालत नहीं आई है कि हिन्दू अपनी हजारों लाखों वर्षों की धर्मनिरपेक्षता की छवि को त्यागकर संघ परिवार की गोद में जा बैठे और धर्म निरपेक्षता को छोड़ दे। और यदि कभी ऐसा दिन आया तो वह सम्पूर्ण हिन्दू जगत के लिये एक काला दिन होगा भले ही उसके लिये दोषी कौन यह हम जीवन भर तलाशते रह जावें।

मैं बार–बार सोचता हूँ कि हिन्दूओं की संख्या घटते जाना क्या चिन्ता का कारण नहीं? क्या हमारे कोरे आश्वासन हिन्दुओं के धैर्य के बांध को लम्बे समय तक रोक पायेंगे? क्या हमारी निष्क्रियता धर्मनिरपेक्ष हिन्दुत्व को धीरे–धीरे साम्प्रदायिकता की दिशा में नहीं ढकेल रही है? सोचने पर कहीं न कहीं तो चिन्ता अवश्य होती है। यह बात तो पूरी तरह प्रमाणित है कि इस खतरे का समाधान आतंकवाद भी नहीं है और साम्प्रदायिकता भी नहीं है। इसका एकमात्र समाधान है, धर्मनिर्पेक्षता अर्थात् समान नागरिक संहिता। कठिनाई यह है कि यह समाधान हो कैसे? लोकतंत्र में संवैधानिक तरीका ही एकमात्र मार्ग होता है। उस मार्ग के माध्यम होते हैं राजनैतिक दल। नया दल बनाना और स्थापित करना न तो कोई आसान काम है न ही अभी वैसी मजबूरी। वर्तमान राजनैतिक दलों में से वामपंथियों के विषय में तो सोचना ही व्यर्थ है क्योंकि वे तो अमेरिका विरोध की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कारण मुस्लिम तुष्टीकरण के साथ बंधे हुए हैं। अन्य अनेक दल पूरी तरह क्षेत्रीय भी हैं और एक–एक व्यक्ति पर निर्भर है। इसलिये उनका कोई स्थायित्व नहीं। जनता दल यू अवश्य ही एक दल है किन्तु वह भी व्यापक शक्ति नहीं रखता। अब बचे सिर्फ दो अर्थात् कांग्रेस और भाजपा जिनका प्रभाव भी है, कुछ सिद्धान्त भी और कुछ दल की रूपरेखा भी। ये दोनों ही सत्ता संघर्ष में इस सीमा तक उलझे हैं कि दोनों को ही न देश धर्म की चिन्ता है न न्याय अन्याय की। दोनों ही तात्कालिक लाभ के लिये किसी भी सीमा तक नीचे उतरने को तैयार रहते हैं। कांग्रेस चाहकर भी धर्मनिरपेक्ष नहीं बन सकती क्योंकि वैसा दिखते ही वह मानती है कि भाजपा उसे निगल जायगी। दूसरी ओर भाजपा यदि जरा भी धर्म निरपेक्ष हुई तो कांग्रेस उसे साफ कर देगी क्योंकि साम्प्रदायिकता के आधार पर ही तो उसका अस्तित्व है। उससे पीछे हटते ही उसे लाभ तो होना संभव नहीं बदले में कट्टरपंथी वोट और खिसक जायेंगे। यही राजनैतिक भय भारत में सभी समस्याओं का कारण है। यदि किसी तरह इन दोनों को एक साथ जोड़ा जा सके तो सब ठीक

हो सकता है अर्थात् दोनों ही धर्मनिरपेक्षता और समान नागरिक संहिता को जोड़कर किसी तरह का राजनैतिक गठबंधन बना लें तो बात कुछ बन सकती है।

मैंने जो सुझाव दिया वह है तो बहुत कठिन किन्तु और दूसरा मार्ग नहीं है। इसलिये जिम्मेदार भारतियों को इस दिशा में गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिये।

प्रश्नोत्तर

1. श्री एम.एस.सिंगला, बैंक कालोनी, नाकामदार, अजमेर, राजस्थान, 305007

सर्वप्रथम दीपमालिका की हार्दिक शुभकामनाऐं। आप राष्ट्रसेवा में, मानव कल्याण में, वसुधैव कुटुम्बकम् की उदात्त भावना में इसी प्रकार संलग्न रहें और तन–मन में स्वस्थ्य रहते हुए बजरंग मुनि तो बने हीं रहें बल्कि उससे आगे बजरंगबली बनें। आगामी दिसम्बर में आप आयु के 70 वर्ष पूरे कर रहे हैं वह भी धूमधाम से। उस समय अलग से भाव प्रेषित करने का प्रयास करूंगा तथापि सम्प्रति आपको अनेकानेक अग्रिम हार्दिक शुभकामनाऐं और बधाइयां। जीवेम् शरदः शतम्!

जहां तक याद पडता है मैंने 'ज्ञान तत्व' भेजना बन्द करने के लिए सूचित कर दिया था। किन्तु पिछले कुछ मास से अंक बराबर मिल रहे हैं। सम्प्रति सन्दर्भ है, अंक 162,

मैं आपके विचारों से तो न केवल सहमत हूँ अपितु प्रशंसक हूँ। परन्तु 'अहिंसा' शब्द से मुझे एलर्जी हो गई है। विशेष रूप से आज के शासन के परिप्रेक्ष्य में! आजादी के बाद स्वशासन जितना नृशंस हुआ है उतना विदेशी शासन भी नहीं था, ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वस्तुतः आज का आतंकवाद मेरी दृष्टि से, लोकतंत्र में निहित तानाशाही की ही देन है। आज तक का रिकार्ड है कि जनता में जो मांगे उठीं उन्हें सरकारों ने तब तक नहीं माना जब तक हिंसात्मक कार्रवाई न हुई हो। शासन की नीति कि मसला बातचीत से तय किया जा सकता है और शासन की अहिंसात्मक नीति है, मात्र दिखावा है।

इसी सोच के मद्येनजर मैंने महसूस किया कि आपके संगठन में तरह–तरह के लोग जमा होकर किस तरह मात्र अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं। आखिर आप मुनि हो गए हैं। आप स्वयं मनन कर देखें कि आप कहां से कहां के लिए चले और कहां पहुंच गए या पहुंचा दिये गए।

मुझमें आपको ज्ञान देने की क्षमता नहीं। न ही मेरा वैसा कोई भाव है। एक निष्ठावान अपने भाई के प्रति जो भाव उद्वेलित हुए उन्हें रोक नहीं पाया और श्रद्धावनत होकर प्रस्तुत कर दिये गए हैं। अपने स्वभाव के अनुरूप आपको बुरा चाहे न लगे तब भी मैं क्षमा चाहूंगा यदि कहीं अकथनीय कह दिया गया हो।

प्रश्न 1:– आपने ज्ञान तत्व की अपील में समाज को सर्वोच्च लिखा है। ऐसा क्यों मानते हैं? यों तो मुझे विचारों को यही विराम दे देना चाहिये।
फिर भी दो विचारों की अनुमति लेकर विराम लूंगा।

गांधी जी ने दो घोडो की सवारी करने की गलती की घोडे भी विपरीत दिशावाले। एक राजनीति का घोडा दूसरा अध्यात्म का घोडा। विपरीत दिशाओं में चलने का परिणाम वही हुआ जो होना था– न माया मिली न राम। आपने गांधीजी के विषय में दिल्ली सम्मेलन में कहा था कि जब गांधीजी से पूछा गया कि

आप आजाद देश को संभाल पायेगे तो गांधी जी ने उत्तर में कहा था कि यह पूछनेवाले आप कौन होते है? यह गांधी की उन्नम आत्मा के अनरूप उत्तर नहीं था। गांधी का उत्तर सही होते हुये भी उन्हें इसकी गहराई में जरूर झॉकना चाहिये था। अगर ऐसा न होता तो आज देश की देशा को सुधारने के लिये दूसरे गांधी (बजरंग लाल) को जन्म न लेना पडता। और जब बजरंग जी से भी वैसा ही प्रश्न किया जाये तब उन्हें भी उसे गम्भीरता से लेना ही हितकर और श्रेयस्कर होगा।

उत्तरः– आपने ज्ञानतत्व बन्द करने के लिये लिखा अवश्य किन्तु मुझे मालूम है कि आप ज्ञानतत्व पढ़ते अवश्य हैं। दूसरी बात यह भी है कि आपकी नीयत खराब नहीं है। प्रसिद्ध सर्वोदयी नेता महावीर सिंह जी बरेली वालों ने भी ऐसा ही लिखा था किन्तु मैंने उनका भी बन्द नहीं किया। मेरा मानना है कि जिन लोगों ने संकीर्ण निष्ठाओं के कारण अपने स्वतंत्र चिन्तन के दरवाजे पूरी तरह बन्द कर लिये हैं वे बुरे लोग नहीं है। उनके बन्द दरवाजे खोलने का हमें प्रयास करते रहना चाहिये। आप अपने दरवाजे चाहे जितनी जोर से बन्द करें किंतु हम उन्हे खोलने का अपना प्रयास बंद नहीं करेंगे। हमारा तो मात्र इतना ही प्रयास है कि आप स्वतंत्र विचार मंथन को जारी रखें।

आपको अहिंसा शब्द से एलर्जी है। यह एलर्जी एक बीमारी है। इसे दूर करना चाहिए। हिंसा या अहिंसा कोई सिध्दांत नहीं होना चाहिए। यह तो मार्ग है जो देश काल परिस्थिति अनुसार बदलता रहता है। महावीर की अहिंसा एक सिध्दांत है जबकि गाँधी की अहिंसा एक मार्ग है। स्वामी दयानन्द, भगत सिंह या सुभाष चन्द्र बोस की हिंसा एक मार्ग है और इस्लाम, साम्यवाद या संघ की हिंसा स्वार्थ। जब तानाशाही होती है तब उस तानाशाही से मुक्ति के मार्ग के रूप में हिंसा या अहिंसा में से किसी एक पर विचार हो सकता है। किन्तु जब लोकतंत्र हो तब हिंसा का समर्थन सिर्फ वही लोग करते हैं जो फिर से अपनी तानाशाही स्थापित करना चाहते हैं। इस्लाम, साम्यवाद और संघ का चरित्र कभी लोकतांत्रिक नहीं रहा। यही कारण है कि ये लोग निरंतर हिंसा का समर्थन करते रहते हैं।

हिंसा दो प्रकार की होती है (1) शासकीय हिंसा (2) सामाजिक हिंसा। लोकतंत्र में राज्य का दायित्व होता है कि वह समाज को न्याय और सुरक्षा की गारंटी दे। यदि समाज सुरक्षा के प्रति आश्वस्त नहीं रहेगा तो उसे अपनी सुरक्षा स्वयं करने की तैयारी रखनी आवश्यक है और यह तैयारी हिंसा की मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करती है। समाज को सुरक्षा के प्रति आश्वस्त रखने के लिये राज्य को संतुलित हिंसा का मार्ग अपनाना चाहिये। यदि राज्य आवश्यकता से कम बल प्रयोग करता है तो समाज में असुरक्षा की भावना पैदा होती है और ऐसी असुरक्षा की भावना ही समाज में हिंसा को प्रोत्साहन देती है। यदि अहिंसा मार्ग रहे तब तो कोई दिक्कत नहीं। तानाशाही के विरूद्ध वह शस्त्र का काम करती है तो लोकतंत्र में व्यवस्था का। किन्तु यदि अहिंसा सिद्धान्त बन जावे तो वह राज्य को संतुलित बल प्रयोग के स्थान पर न्यूनतम बल प्रयोग का संदेश देती है। इससे समाज में असुरक्षा का भाव पैदा होता है।

गांधी जी ने गुलामी में अहिंसा को मार्ग के रूप में स्वीकार किया किन्तु स्वतंत्रता के बाद वे क्या करते यह कहा नहीं जा सकता। दुर्भाग्य से उनके बाद आने वालों ने अहिंसा को सिद्धान्त मान लिया और न्यूनतम बल प्रयोग का मार्ग अपनाया। गांधी जी के जाने के कुछ वर्ष बाद ही हिंसा को रोकने के लिये जब एक प्रदेश सरकार ने संतुलित बल प्रयोग किया तो बेचारे एक मुख्यमंत्री को गांधीवादियों की अनावश्यक आलोचनाओं का शिकार बनना पड़ा। मुख्यमंत्री ने इस्तीफा तक दे दिया। यह भारत के लिये सबसे दुखद दिन था जब राज्य को संतुलित बल प्रयोग के स्थान पर न्यूनतम बलप्रयोग का मार्ग अपनाना पड़ा। उसके परिणामस्वरूप समाज में लगातार हिंसा के प्रति समर्थन बढ़ता गया।

मेरे और आपके बीच मतभेद यह है कि आप इस अराजकता के विरूद्ध समाज में हिंसा का समर्थन करते हैं और मैं इसे राज्य की नीति के विरूद्ध राज्य को अधिक बलप्रयोग के लिये प्रोत्साहित करना चाहता हूँ। स्पष्ट है कि आपका उद्धेश्य सत्ता है और मेरा नहीं। मैंने पोटा से भी अधिक कठोर कानून का पक्ष लिया है। मैंने अल्पकाल के लिय चौक पर सार्वजनिक फांसी का समर्थन किया है। किन्तु

मैंने यह सम्पूर्ण समर्थन व्यवस्था जनित बल प्रयोग के लिये किया है, समाज में फैल रही हिंसा के मैं पूरी तरह विरूद्ध रहा हूँ और आज भी हूँ।

जहाँ तक मुझे जानकारी है कि आप सिर्फ दुसरों को ही हिंसा के लिये प्रोत्साहित करते रहते हैं। स्वयं आपका आचरण कभी हिंसक नहीं रहा। आपने कभी किसी के अन्याय के विरूद्ध कोई बड़ी हिंसा में भाग लिया हो ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। बाहर रहकर दूसरों को उकसाते रहने का कोई अर्थ नहीं। मेरा वैसा स्वभाव नहीं। मैं सामाजिक अहिंसा का अधिकतम पक्षधर हूँ और शासकीय अहिंसा के विचार का अधिकतम विरोधी।

जनता की मांगे तब तक स्वीकार नहीं होती जब तक हिंसा न हो। इस आधार पर आप हिंसा को उचित मानते हैं। मैं नहीं मानता। मेरा मानना है कि राज्य की इस प्रवृत्ति को बदल दिया जावे। आप लाभ उठाने वालों की भीड़ में शामिल होना चाहते हैं किन्तु मैं नहीं चाहता। आपको अहिंसा से एलर्जी है और मुझे अव्यवस्था से एलर्जी है। मैंने अपने जीवन के सत्तर वर्षों में अव्यवस्था की रोकथाम के ही उपाय खोजे हैं और आपने राजनैतिक कमजोरी के कारण अव्यवस्था बढ़ाने में। आप भी सफल हैं और मैं भी। किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करिये कि कौन सा मार्ग न्यायोचित है?

आपने मेरे जीवन पर कुछ प्रश्न उठाये हैं। मैं नहीं समझता कि मुनि होकर मैं कहीं अन्यत्र चला गया। पहले मैं अपनी और अपने परिवार की चिन्ता अधिक करता था। उसके साथ–साथ समाज और समूह की भी चिन्ता करता था। मुनि बनने के बाद मेरे समक्ष स्वंय की या परिवार की चिन्ता गौण होकर राष्ट्र और समाज की चिन्ता मुख्य हो गई। पचीस दिसम्बर के बाद मेरी चिन्ता और प्रयत्नों का केन्द्र समाज की दिशा में अधिक बढ़ जायगा। आप बताइये कि इस दिशा में बढने के कारण आपको क्यों निराशा हुई। मैं तो अपनी लाइन को ठीक दिशा में बढ़ा हुआ कदम मान रहा हूँ। आप और साफ–साफ प्रश्न उठाइयेगा।

मैंने ज्ञानतत्व की अपील में समाज को सर्वोच्च लिखा है और राष्ट्र को उसका एक अंग। मेरी यह मान्यता रही है कि परिवार की अपेक्षा गांव को, गांव की अपेक्षा राष्ट्र को और राष्ट्र की अपेक्षा समाज को सशक्त करना चाहिये। राष्ट्र परिवार, गांव, जिला, प्रदेश आदि से तो उपर की इकाई है किन्तु समाज से राष्ट्र उपर न होकर नीचे ही होता है क्योंकि दुनिया के सभी राष्ट्रों के व्यक्ति समाज में एकाकार हो जाते हैं। भिन्न–भिन्न समाज सम्पूर्ण समाज के अंग है। इन्हें पृथक समाज नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति समाज का अंग होता है और नागरिक राष्ट्र का। राष्ट्र और राज्य के बीच क्या फर्क है वह भिन्न विषय है किन्तु समाज और राष्ट्र बिल्कुल भिन्न होते हैं। हिन्दू धर्म की अवधारणा में राष्ट्र का अर्थ सम्पूर्ण विश्व बताया जाता है, भारत तो उसका संकुचित अर्थ बन गया है। संघ की अवधारणा हिन्दू धर्म की अवधारणा के बिल्कुल विपरीत है। मेरे विचारों में हिन्दुत्व की सोच प्रबल है और आपके मन में संघ परिभाषा। इसलिये सोच का यह फर्क है। मैं कभी राष्ट्रवादी नहीं रहा क्योंकि मैं ऐसे किसी भी संकुचित वाद से दूर रहना चाहता हूँ। मैं तो अपने को यथार्थवादी मानता हूँ जिसका अर्थ है बिना किसी पूर्वाग्रह के देश काल परिस्थिति के अनुसार कार्यक्रम तय करना। आप अपना प्रश्न और अधिक स्पष्ट करिये तब उत्तर देना ठीक रहेगा।

गांधी जी ने कितने घोडों की सवारी की थी इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता। गांधी जी ने देश को गुलाम बनाकर रखने वालों के प्रश्न के उत्तर में प्रति प्रश्न किया उससे मैं सहमत हूँ। मुझसे भी यदि सत्ता संघर्ष में शामिल लोग प्रश्न करें तो मेरा भी यही उत्तर है क्योंकि उनका उद्येश्य हमें उलझाना है। किन्तु गांधी जी के मन में हमेशा यह प्रश्न उठता रहता था कि स्वतंत्रता के बाद की व्यवस्था कैसी होगी। मेरे मन में भी लगातार यह प्रश्न चलता रहता है। आपको यदि ऐसा लगता है कि गांधी का भी उत्तर अपर्याप्त था और मेरा भी तो आप इस संबंध में सहायता करिये कि मैं ऐसे प्रश्न का क्या उत्तर दूं। गांधी जी ने अपने जीवन काल में अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये और अनेक के उत्तर वे नहीं दे सके।

ऐसे अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर खोजने में हम आप लगे हैं। मेरे बाद भी बहुत से प्रश्न अनुत्तरित रहेंगे। ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर न गांधी जी दे सकें न मैं दे पाया किन्तु आप दे सकते हैं तो आपके इस प्रयत्न के लिये मैं आपका आभारी रहूंगा।

''गांधी जी आध्यात्म की राह पर भी थे और राजनीति की राह पर भी'' आपका यह निष्कर्ष ठीक नहीं। गांधी जी की राह धर्म या आध्यात्म से हटकर समाज और राजनीति की थी। गांधी जी के बाद उनके दो टुकड़े हो गये। एक का प्रतिनिधित्व नेहरू जी ने किया जो पूरी तरह राजनीति थी। उसमें न
धर्म और आध्यात्म था न ही समाज। दूसरे का नेतृत्व विनोबा जी ने किया जिसमें राजनीति बिल्कुल शून्य थी। विनोबा जी की सोच तो समाज की थी किन्तु उसमें आध्यात्म भी जुड़ा था। गांधी जी दो घोड़ों को एक साथ जोड़कर गाड़ी पर सवार होते थे। नेहरू और विनोबा ने ऐसी गाडी नहीं बनाई। परिणाम आपके समक्ष है। मैं भी राजनीति शास्त्र और समाजशास्त्र रूपी दो घोड़ों को जोड़कर गाड़ी बना रहा हूँ। आप मुझे बताइये कि इसमें मैं गलत कहाँ हूँ और क्या करूं। मुझे किसी संघ के कार्यकर्ता की सलाह नहीं चाहिये। मुझे आपकी और केवल आपकी मात्र सलाह चाहिये कि मुझे विनोबा जी का सामाजिक, या नेहरू जी के राजनैतिक एक पक्षीय मार्ग पर चलना ठीक है या गांधी जी के सामाजिक राजनीति की विचार धारा जो आपके शब्दानुसार दो घोड़ों की सवारी ही कही जानी चाहिये।

2. श्री कुन्दनलाल, खलीलपुर बदायूँ, उत्तरप्रदेश

प्रश्न आप पूरी ताकत से समाज निर्माण में लगे हैं। गायत्री परिवार भी लगातार इसी दिशा में सक्रिय है। क्या कारण है कि मिलकर योजना नहीं बन रही?

उत्तरः गायत्री परिवार समाज को मजबूत करने में लगा है यह अच्छी बात है। किन्तु मेरे प्रयत्न बिल्कुल भिन्न है। मेरे विचार में समाज को कुछ स्वार्थी तत्व तोड़ रहे हैं। समाज टूट नहीं रहा है बल्कि तोड़ा जा रहा है। गायत्री परिवार उसे मजबूत कर रहा है और मैं शत्रु पक्ष से टकरा रहा हूँ। हम दोनों की राह एक नहीं है। इसलिये हमें अलग काम करना चाहिये।

ज्ञान यज्ञ परिवार या लोक स्वराज्य अभियान सम्पूर्ण भारत में अकेली ऐसी संस्था है जो इस दिशा में सक्रिय है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप यदि समाज विरोधी ताकतों से संघर्ष की इच्छा रखें तो हमारे साथ भी जुड़ जाइये किन्तु हम अपना प्रयत्न बन्द कर दें यह सलाह उचित नहीं। दोनों पृथक–पृथक काम करते हुए एक दूसरे का सहयोग करें इतना ही ठीक है।

3. श्री नरेश कुमार शर्मा सी 803 सेटेलाइट पार्क, गुफा रोड़, जोगेश्वरी पूर्व, मुम्बई

समीक्षा–अंक एक सौ साठ मिला। आपने बहुत ही सटीक लिखा है कि समाज की सामाजिक समस्याओं के समाधान में कानूनी हस्तक्षेप बाधक है। यदि यही बात हम सब लोग समझ लें तो राज्य की गुलामी अपने आप कम हो जायेगी।

उत्तरः–आपने मेरी भावना को ठीक–ठीक समझा है। यह बात धीरे–धीरे बहुत लोग समझ लें ऐसा प्रयास करने की आवश्यकता है। राज्य पूरी ताकत से समझा रहा है कि समाज की सभी समस्याएँ सिर्फ राज्य ही ठीक कर सकता है। हम राज्य को कहें कि समाज की सामाजिक समस्याएँ कानून से नहीं सुलझ सकती। इसलिये राज्य अपने न्याय और सुरक्षा तक ही सीमित रहे।

4.श्री प्रभु, सत्यशीलम प्रेस सागर, मध्यप्रदेश, 470002

समाचारः–शिवराम जनकल्याण समिति द्वारा दो अक्टूबर को गांधी जयन्ती का आयोजन किया गया।

गांधी विचार धारा के राजनैतिक प्रयोग के पक्ष विपक्ष में विचार प्रकट किये गये। डॉ. प्रभु ने गांधीवादी लोक स्वराज्य पार्टी की प्रस्तावना प्रस्तुत की जिसके अनुसार समाज सेवा और प्रदर्शन वर्तमान स्थितियों में लोकस्वराज्य लाने में सक्षम नहीं है। इसके लिये तो गांधी की लोकस्वराज्य की आवाज संसद और विधानसभाओं में गूंजनी चाहिये। कार्यक्रम की अध्यक्षता गांधी जी के सानिध्य में रहे राष्ट्रपति पुरूस्कार प्राप्त शिक्षक पण्डित गोकुल प्रसाद जी तिवारी ने की। उन्होने कहा कि जब तक हम अपने स्वंय के सामाजिक जीवन में गांधी को नहीं उतारेंगे तब तक लोग हमारा अनुसरण नहीं करेंगे। अन्य कई वक्ताओं ने भी पक्ष विपक्ष में अपने–अपने विचार रखे।

समीक्षाः– मैं गोकुल प्रसाद तिवारी जी के कथन को अधूरा मानता हूँ। गांधी जी का पहला काम हमें गुलाम बनाकर रखने वालों से संघर्ष था। बाकी सभी कार्य उसके सहायक कार्य थे। गोकुल जी तथा अन्य गांधी का अनुकरण करने वाले संघर्ष वाले काम को छोड़कर बाकी सब कर रहे हैं। आज राज्य शक्ति समाज को गुलाम बनाकर रखने में इसलिये सफल हो रही है कि ना समझ लोग सेवा कार्य को ही गांधी का असली काम बताने लगते हैं। मेरा तो यह मत है कि लोक स्वराज्य के लिये संघर्ष को पहला काम घोषित किया जाय और यदि मजबूरी हो तो कुछ समय के लिये गांधी के अन्य समाज सेवा समाज सुधार के कार्यों को बन्द कर दिया जाये। लोक स्वराज्य संघर्ष में सेवा कार्य सहायक हो तो ठीक है अन्यथा गांधी के नाम पर संघर्ष पलायन की भाषा बोलने वालों से सावधान रहना चाहिये।

5.श्री के.जी.बालकृष्ण पिल्ले, तिरूअनन्तपुरम, केरल, 695005

प्रश्नः– ज्ञानतत्व एक सौ उन्सठ में आपने वामपंथियों के विषय में लिखा है कि ये लोग साहित्य जगत से लेकर शैक्षिक जगत तक मुख्य–मुख्य स्थानों पर इस प्रकार अपने मोहरे फिट रखते हैं कि सामान्य वातावरण में असत्य को सत्य प्रमाणित करने में इन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। आपका यह कथन पूरी तरह सही है किन्तु इस पर और विस्तार से चर्चा की आवश्यकता है। आपने इस विषय पर गहराई से विचार मंथन किया है। इसलिये आप कुछ उदाहरण सहित अपने कथन को प्रस्तुत करने की कृपा करें।

उत्तरः– वैसे तो सम्पूर्ण विश्व में ही वामपंथ में विचारमंथन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु भारत में तो यह पूरी तरह एकक्षत्र ही है। राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ वामपंथ की आंशिक नकल कर रहा है। अन्य कोई इस राह पर चल ही नहीं पा रहा।

वामपंथ ने योजना पूर्वक पहले अपने लोगों को विचारक के रूप में स्थापित किया, उसने ऐसे लोगों को सम्मानित किया, पारितोषिक दिये दिलाये और फिर उन्हें महत्वपूर्ण पदों पर स्थापित कर दिया। ये स्थापित लोग बदले में सुनियोजित तरीके से वामपंथी विचारों को स्थापित करने लगे। समाज में श्रम प्रधान, बुद्धि प्रधान और धन प्रधान के रूप में तीन तरह के लोग हैं। वामपंथियों ने बुद्धि प्रधान लोगों को अपने साथ जोड़ा, धन प्रधानों का विरोध किया और श्रम प्रधान लोगों को धोखे में रखा। साहित्य जगत से लेकर शैक्षिक जगत तक सिर्फ बुद्धि प्रधान लोग ही होते हैं इसलिये उस क्षेत्र में इनका प्रभाव बढ़ता चला गया। आज भारत की यह हालत है कि वामपंथी जिस बात को आगे लाना चाहते हैं वही मुद्या चर्चा के केन्द्र में आ जाता है। अन्य सारे मुद्दे पीछे छूट जाते हैं। इस चर्चा में भी वामपंथियों के विचार ही धीरे धीरे स्थापित हो जाते हैं क्योंकि इनके कार्यकर्ता समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करने में सफल हो जाते हैं जबकि संघ वालों की स्वतंत्र पहचान बन नहीं पाती। तीसरा समूह कोई है नहीं।

उदाहरण स्वरूप वामपंथ ने छल पूर्वक पूरे देश को समझा दिया है कि कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि घातक है। संघ परिवार तो ऐसे निष्कर्ष से प्रसन्न था ही क्योंकि धन पतियों को ऐसे परिणाम से सुविधा थी। श्रम जीवियों के सभी संगठनों पर बुद्धिजीवी वामपंथियों का कब्जा

है। आज भारत का गरीब श्रमजीवी भी यह मानने लगा है कि कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि घातक है। इतनी असत्य बात आसानी से सत्य प्रमाणित कर दी गई।

सम्पूर्ण भारत में इक्कीस करोड़ लोग तेरह रूपया प्रतिदिन से भी कम पर भरणपोषण कर रहा है। न्यूनतम श्रम मूल्य अस्सी रूपया प्रतिदिन से भी कम है। गरीबी रेखा और श्रम मूल्य का उदाहरण देकर शिक्षा और सरकारी कर्मचारियों के वेतन वृद्धि की वकालत की जा रही है। वामपंथियो ने भूख का हल्ला करके शिक्षा विस्तार की आवश्यकता प्रमाणित कर दी है।

पूरा भारत मानता है कि वर्ग संघर्ष घातक है। सिर्फ वामपंथी ही वर्ग संघर्ष के घोषित समर्थक हैं। किन्तु सम्पूर्ण भारत में वर्ग निर्माण और वर्ग संघर्ष की लहर चल रही है।

ऐसे अनेक विचार हैं जो घातक और असत्य होते हुए भी समाज में लाभकारी और सत्य प्रमाणित कर दिये गये हैं। किन्तु वर्तमान समय में इनका तिलिस्म कुछ टूट रहा है। पूरी ताकत लगाकर भी ये लोग परमाणु उर्जा मामले में उतना सफल नहीं हुए जितनी आशा थी। यद्यपि संघ परिवार ने तो राजनीतिक कारणों से इनकी ताल में लय जोड़ी किन्तु सफलता नहीं मिली। धीरे–धीरे इनका प्रभाव कम हो रहा है किन्तु समय बहुत लगेगा और तब तक पचासों वर्ष बीत जावेंगे।

शुर होता है निर्भय अक्रुर

हिन्दुस्तान में जैनों, बौद्धों और ब्रह्मणों में अहिंसा तो थी, पर उसमें ताकत नहीं थी। अहिंसा की ताकत बनायी गांधीजी ने। उन्होंने अहिंसा को खाने पीने के क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा, मलहमपटटी लगाने या बीमार की सेवा करने तक ही अहिंसा की मर्यादा नहीं मानी, इसलिये उनकी अहिंसा में शौर्य दाखिल हुआ। अहिंसा के लिये हाथ में तलवार लेने की जरूरत नहीं है। तलवार लेना तो डर का लक्षण है। हम प्रेम से, निर्भयता से आगे बढें और मरने का मौका आये तो मरें, इस तरह की वृत्ति गांधीजी ने सिखायी। गांधीजी भी वैश्य थे, लेकिन वे दयाभाव से ही संतुष्ट न रहे। उन्होंने कहा कि हिंसा का मुकाबला करने से मैं बिल्कुल नहीं घबराता। हमने गांधीजी को नजदीक से देखा है। वे अत्यंत निर्भय, निष्कंप पुरूष थे। वे कहते थे कि 'मेरा अहिंसा की परीक्षा मेरे मरने पर होगी, जीते जी नहीं। मरते समय मैं 'रामनाम' लूं, तो परीक्षा पास हूं। और ठीक वैसा ही हुआ। उनको जैसे ही गोली लगी वैसे ही उनके मूंह से निकला' हे राम!' यह निर्भय मनुष्य की करूणा है। उन्होंने करूणा को निर्भयता के साथ जोड दिया।

जिस करूणा में निर्भयता नहीं, वह करूणा नहीं, देहासक्ति है। मैं सामने वाले का दुःख देख नहीं सकता, क्योंकि अपना दुःख भी नहीं देख सकता। अगर ऐसा है, तो यह करूणा कायर है। मैं अपना दुःख देख सकता हूं, पर सामनेवाले का दुःख देख न सकूं, तो वह सच्ची करूणा है। वृक्षैव तिष्ठासेत् छिद्यमाने न ब्रुयात्– वृक्ष जैसे खडे रहें, कोई काटे, तब भी मुंह से शब्द न निकले– ऐसी वृत्ति होने से ही करूणा निर्भयता के साथ जुडी रहेगी।

कोहट में हिंदू–मुसलमानों के दंगे में हिन्दू प्रतिकार न करके भाग गये थे, तो गांधीजी ने उन्हें कायर कहा था। क्या किया जाये? इस समस्या को सुलझाना मुश्किल नहीं है। कायरता के दोष से छूटने के लिये यदि क्रुर बनें तो वह आग से निकलकर गरम राख मे गिरने के समान है। कायरता और क्रूरता एक ही वस्तु के दो नाम हैं। मुठठीभर लोगों पर क्रोध करने में जैसी क्रूरता है वैसी कायरता भी है और भयभीत होकर भाग निकलने में जैसी कायरता है वैसी क्रूरता भी है, क्योंकि डरपोक आदमी मन में हिंसा करता ही रहता है। अर्जुन को देखकर भागना और द्रौपदी के सोये हुये बच्चों पर छुरी चलाना, ये दोनों बातें एक ही अश्वत्थामा ने की थी। शौर्य जितना कायरता से दूर है, उतना ही क्रूरता से भी दूर है। शूर निर्भय होता है और इसलिये वह अक्रूर भी होता है।

अहिंसा वीरों की होती है। उसके लिये शौर्य चाहिये, लेकिन वह बुद्धियुक्त होना चाहिये। अहिंसा ही ऐसा बुद्धियुक्त शौर्य रख सकती है। समझदारी और शौर्य में विरोध आने से या तो समझदारी को महत्व देकर कायरता का व्यवहार होगा, या शौर्य को महत्व देकर मूर्खता का व्यवहार होगा। हिंसा में यह आपत्ति बराबर आती रहती है, अहिंसा में नहीं आती। जो कायर नहीं होता, क्रूर नहीं होता, समत्वबुद्धि से काम करता है, निर्भय होता है, वही अहिंसा की शक्ति को काम में ला सकता है। अहिंसा सबसे अच्छे की आशा करती है और खराब की तैयारी रखती है। अहिंसा का अपना दिख खुला रहता है।

प्रिय भाई ओम प्रकाश जी

सादर जयजगत

महामहिम राष्ट्रपति जी न तो अपना वेतन घटाऐगी और न ही आपके पत्रों का उत्तर ही देगीं। इसलिये 30 जनवरी को राजघाट में घोषित प्रदर्शन तो करना ही होगा।

मैं सोचता हूँ कि प्रदर्शन को प्रभावी बनाने के लिये हमें एक यात्रा टोली बापुकुटी सेवा ग्राम से राजघाट दिल्ली, एक मेरठ से राजघाट, एक हरियाणा से राजघाट और एक राजस्थान से राजघाट प्रचार करते हुये सब 30 जनवरी को राजघाट दिल्ली पहुँचे। एक टोली दिल्ली में घूमेंगी और 30 तारिख को वह भी राजघाट पहुँचे। मीडिया को मिला जाये और उनका सक्रिय सहयोग हमें मिले ऐसी रचना की जाय।

सबको सक्रिय करो इसके लिये
आपका अपना
महावीर त्यागी—अध्यक्ष,
हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मण्डल, मो0 09416307506

मूल्यों और मुददों का प्रश्न